वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

February - 2026

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

भावनगर - ३६४ ००१.

‘सत्संगरूपी नेवला बेल’!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वाध्याय है सो तो ‘नेवलाबेल’ समान है। ज्ञानीको अपना परमात्मा नेवलाबेल समान है। यह स्वाध्यायको नेवलाबेल समान जानना चाहिये। ‘नेवलाबेल’ मतलब क्या पता है? नेवला और सर्प लड़ाई करते हैं, इसमें सर्प तो ज़हरीला प्राणी है। नेवलेको काटता रहता है, डंस मार देता है, एक नेवलाबेल नामसे प्रचलित वनस्पति होती है। नोळवेल गुजरातीमें कहते हैं इसमें वेल नाम बेल–वनस्पति होती है। जिसे सूँघने पर नेवलेका ज़हर उतर जाता है। फिरसे ताकतवर होकर सर्पके साथ लड़ने आ जाता है। वैसे (वर्तमान पूर्वकर्मके) उदयमें, कार्योंमें जो परिणाम चले जाते हैं उनका रस स्वाध्यायके दौरान तोड़ना है। क्योंकि (मुमुक्षुको) अभी परमात्माका अवलंबन तो हाथ लगा नहीं। ज्ञानी तो भीतरमें चले जाते हैं, बाह्यमें उदयके प्रतिके रसको तोड़ते हुए आगे निकल जाते हैं, मुमुक्षुको किसका आधार लेकर आगे बढ़ना? उसे तो सत्पुरुष, सत्समागम, सत्‌शास्त्र ये सब इसके आधार हैं! जो इसके लिये नेवलाबेल समान है। बाहरमें उदयके कार्योंमें जो रस ले लिया हो (इसके सामने) सत्‌शास्त्रोंके स्वाध्याय दौरान इतने रसपूर्वक प्रवर्तन करे, इतने रसपूर्वक ध्यान दे, इतने रसपूर्वक उस विषयको अपना हित साधनेकी मुख्यतापूर्वक लक्ष्यगोचर करे, हितका साधन बना दे, इतना प्राधान्य देवे और ऐसा लक्ष्य रखे तो वह ‘नोळवेल’ – नेवलाबेल जैसा कुछ अंशमें फलीभूत होगा। रस लेगा तो कुछ हदतक (फल) मिलेगा।

मुमुक्षु : सर्पसे भी नेवलाबेल शक्तिशाली?

पूज्य भाईश्री : ज़हर जो उतारता है! ज़हर उतारता है न? अधिक शक्तिशाली है सीधी–सी बात है। नित्य स्वाध्याय करनेके पीछे यह कारण है। (स्वाध्यायको) ‘परम तप’ कहा है। मुमुक्षुको अध्यात्मका विषय, अपने स्वरूपमें एकाग्र होनेमें स्वाध्यायका विकल्प निमित्तभूत होता है, इसलिये ‘परम तप’ कहा गया है। ‘परम तप’ माने उत्कृष्ट तप, शुद्ध परिणाम। इस ‘एकको ही ग्रहण कर’ एक को ही ग्रहण करनेका यहाँ फरमान है। एक को ही ग्रहण करने पर ‘परम तप’ होगा। वरना ‘परम तप’ कहाँ रहा? यूँ ही कोई रूढ़िगतरूपसे कोई कहावत नहीं है। चलो सुबह ८ से ९ स्वाध्याय करे फिर वहाँ का वहाँ झाड़कर चल दिये – तो ऐसा स्वाध्याय कोई ‘परम तप’ नहीं है। उस स्वाध्यायको ‘परम तप’ नहीं कहते। ‘स्वाध्याय’ केवल नाममात्र नहीं है। भीतरमें जो रस है वह उसका असली कस है। रसमें सारा कस भरा है। सिर्फ बाह्य क्रियाके खोखलेपनमें कोई रस नहीं होता। रस विहीन क्रियामें कस कैसा? कि वह तो बेकार है। सब बिना कसकी बात है।

*

(प्रवचनांश...‘बहिनश्रीके वचनामृत’ बोल क्र.–२०८, दि.२४–१०–८७, प्रवचन क्र.–१६६, ‘अध्यात्म सुधा’ भाग–६, पन्ना नं – ३२२,३२३)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्–२५५२, अंक–३३८, वर्ष–२८, फरवरी–२०२६

कहानरत्न किरणें!!

– अध्यात्म युगसृष्टा
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
('परमागमसार'में से साभार उद्धृत)

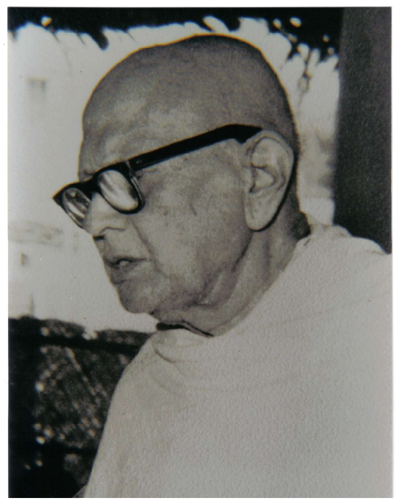

मांगलिकका अर्थ :– 'मंग' अर्थात् पवित्रता और 'ल' अर्थात् प्राप्ति। आत्मा आनन्द–स्वरूप है, उसके आनन्दकी प्राप्ति होना – वही मांगलिक है। वस्तु तो आनन्दस्वरूप है, किन्तु 'पर्यायमे उसकी प्राप्ति होना ही मांगलिक है'। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, सत् शाश्वतज्ञान और आनन्दस्वरूप है, पर्यायमे उसकी प्राप्ति होना ही मंगल है। २८३

*

दूसरा अर्थ :– 'मम्' और 'गल'। पुण्य–पापके रागरूप मैं हूँ और उसका फल भी मैं हूँ – ऐसा अहंकार ही 'मम्' अर्थात् विपरीत अभिप्राय है, उसका नाश ही 'गल' अर्थात् वही मंगल है। प्रथम अर्थ अस्तिसे है; और दुसरा अर्थ नास्तिसे है। मिथ्यात्वका नाश ही मम् + गल = मंगल है। २८४

*

कैसा है चैतन्यभाव? – कि विभु है, अर्थात् निज स्वरूप में व्याप्त होने वाला है। स्वयंके विशेषोमें व्याप्त होनेवाला गुणोंका एकरूप विभु है। निज स्वरूपमें व्याप्त होनेवाला चैतन्यविभु है।

वह पर्यायमें नहीं आता, ऐसा निर्णय, ऐसा अनुभव पर्यायमें है। परन्तु उस पयार्यमें वस्तु नहीं आती। अनुभवसे वस्तु भिन्न है, पर अनुभवकी दृष्टिमें मात्र एकरूप वस्तु ही है कि जो सर्व कर्म उपाधिसे रहित है – ऐसे अनुभव (अभ्यास) के संस्कार ही एक मात्र कर्तव्य है। २८५

*

आचार्यदेव कहते हैं कि अनेक प्रकारके शुभ विकल्प करनेसे कोई कार्यसिद्धि तो होती नहीं। कार्यसिद्धि तो अनंत–अनंत आनन्दके सागर–ऐसे आत्माकी ओर ढ़लनेसे ही होती है। उधर क्यों नही

झुकता? अनेक प्रकारके शुभ विकल्पोंकी क्रियामें जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है, वैसे स्वानुभवरूपी कार्यको सिद्ध करनेसे भ्रष्ट होता जाता है। प्रथम आत्माका निर्णय करके स्वानुभवका प्रयत्न करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता, और शुभ विकल्पोंमें आगे बढ़ता जाता है, वह स्वानुभव-मार्गसे भ्रष्ट होता जाता है। अशुभकी ओर जानेकी तो बात है ही नहीं। श्रीमद् राजचंद्रजी भी कहते हैं कि 'केवल वांचन ही करते रहनेसे चिन्तन शक्ति घटती है' उसी प्रकार जैसे केवल शुभविकल्पों और क्रियाकाण्डमें बढ़ते जाते हैं, वैसे ही स्वानुभव - मार्गसे भ्रष्ट होते जाते हैं। सर्व शास्त्रबोधका सार तो आत्मानुभव करना है। बारह अंगमें भी आत्मानुभूति ही करनेका निर्देश है। २८६

*

प्रश्न :- शुद्ध निश्चयका पक्ष तो करना न?

उत्तर :- पक्ष करना माने क्या? अनुभव होनेके पूर्व ऐसा पक्ष होता है कि मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति ही हूँ, पुण्यपाप भावरूप मैं नहीं हूँ - प्रथम ऐसा विकल्प सहित निर्णय होता है, पर यह मूल परमार्थवस्तु नहीं है। प्रथम शुद्ध निश्चयनयका पक्ष आता है - होता है पर अन्तर स्वानुभवसे निर्णय करना ही मूल वस्तु है। २८७

*

अहो! यहाँ भगवानका विरह वर्तता है, अतः तत्त्वकी विपरीत श्रद्धा - आचरणवालोंको रोकनेवाला कोई नहीं रहा। वस्तु तो अन्तरतत्त्व है और लोग बाह्य क्रियाकाण्ड़ में खो गए हैं। भाई! हम तो वस्तुका जो सत्य स्वरूप है, वही कहते हैं। यह बात विपरीत श्रद्धावालोंको न रुचे तो क्षमा करें। भाई! विपरीत श्रद्धाके फल बहुत भयंकर हैं। इसलिए तो श्री कुंदकुंदाचार्यने कहा है कि हमारे शत्रुको भी द्रव्यलिंग न हो। हमको किसीके साथ व्यक्तिगत विरोघ नहीं है। वे सभी द्रव्य स्वभावसे तो प्रभु हैं, अतः वे द्रव्य अपेक्षा तो साधर्मी हैं, जिससे हमको समभाव है। २८८

*

सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि शुद्ध निश्चयनयसे मैं मोह-राग-द्वेष रहित हूँ, इससे सम्यग्दृष्टिको कोई ऐसा नहीं लगता कि शुभ और अशुभ दोनों समान हैं, अतः अशुभ भले ही हों? सम्यग्दृष्टि अशुभसे छूटने हेतु वांचन, श्रवण, विचार, भक्ति आदि करता है। प्रयत्न करके भी अशुभको छोड़कर शुभमें प्रवृत हो - शास्त्रमें भी ऐसा उपदेश है। परमार्थदृष्टिसे शुभ और अशुभ समान हैं, फिर भी स्वयंकी भूमिकानुसार अशुभसे छूटकर शुभमें प्रवृत होनेका विवेक रहता है और वैसे ही विकल्प भी आते हैं। २८९

*

स्वसमय और परसमय के साथ वाद-विवाद करना योग्य नहीं। तूँ तेरे आत्माका अनुभव कर। परके साथ वाद-विवादमे पड़ना ठीक नहीं। निधान प्राप्त कर, निज वतनमें जाकर, उसे भोगनेकी सीख है अतः निज-निधिको प्राप्त कर के अकेले भोगना ही श्रेयकर है। २९०

*

प्रश्न :- सम्यक्-सम्मुख जीव तत्त्वके विचार कालमें रागको अपना जानता है या पुद्गलको?

उत्तर :- समयक्-सम्मुख जीव रागको

अपना अपराध मानता है। और अन्तरमें उतरनेके लिए 'राग मेरा स्वरूप नहीं, रागरूप मैं नहीं' – ऐसा जानकर उनका लक्ष्य छोड़, अन्तरमें उतरनेका प्रयत्न करता है। २९१

*

प्रश्न :– स्वभाव–सम्मुख होने के लिए मैं शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ आदि चिन्तन करते–करते अपूर्व आनन्द आता है, वह अतीन्द्रिय आनन्द है या कषायकी मन्दता, यह कैसे समझमें आए?

उत्तर :– चिन्तनमें कषायकी अतीव मंदता होने पर उसे आनन्द मान लेना भ्रम है, वह सच्चा अतीन्द्रिय आनन्द नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आते ही राग और ज्ञानकी भिन्नता प्रतीतिमें आती है – उस अतीन्द्रिय आनन्दका क्या कहना! वह तो अलौकिक है। यथार्थ रुचि वाले जीवको कषायकी मन्दतामें अतीन्द्रिय आनन्दका भ्रम नहीं होता। अतीन्द्रिय आनन्दके स्वाद आए बिना उसे चैन नहीं होता। २९२

*

प्रश्न :– ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं ; और सम्यक् सन्मुख जीव भी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं; उन दोनोंकी विधि का प्रकार एक ही है, अथवा कोई अन्तर है?

उत्तर :– ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्वकल्प होते हैं। उन्हें आत्माका लक्ष्य हुआ है, आत्मा लक्ष्यमें है, और उसमें एकाग्रताका विशेष पुरुषार्थ करने पर विकल्पोंसे छूटकर निर्विकल्प होते हैं। स्वसन्मुख जीवको तो अभी आत्माका लक्ष्य नहीं हुआ, आत्मा लक्ष्यमें नहीं आया, उसने धारणाज्ञानसे जाना है, (वह) प्रत्यक्ष नहीं हुआ। विकल्पपूर्वक आत्माका लक्ष्य धारणारूप हुआ है, उसे अन्तरपुरुषार्थ उग्र होते–होते सविकल्पता छूटकर निर्विकल्पता होती है (इस प्रकार निर्विकल्प होनेकी विधिका प्रकार एक होने पर भी ज्ञानियोंने वेदनसे आत्माको जाना है और स्वसन्मुखवाले जीवने धारणासे – आनन्दके वेदन बिना – आत्माको जाना है)। २९३

*

प्रश्न :–विकल्पसे निर्विकल्प होनेमें सूक्ष्म विकल्प रोकते हैं , उनका क्या करना?

उत्तर :– निर्विकल्प होनेमें विकल्प नहीं रोकते, पर तूँ अन्तरमें ढ़लने योग्य पुरुषार्थ नहीं करता, जिससे विकल्प नहीं टूटते। विकल्पोंको तोड़ना नहीं पड़ता, पर स्वरूपमें ढ़लनेका पुरुषार्थ उग्र होने पर विकल्प सहज ही टूट जाते हैं। २९४

*

एक समयकी निर्मल पर्यायको –जो सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी पर्याय है – रत्नत्रय कहा है तो उसके फलरूप केवलज्ञानपर्याय महारत्न है और ज्ञानगुणकी एक समयकी वह पर्याय महारत्न है, तो ऐसी अनन्त–अनन्त पर्यायोंका धारक ज्ञानगुण भी महारत्न है। ऐसे ज्ञान, आनन्द आदि अनन्तगुणोंरूप महा–महा रत्नोंका धारक आत्मद्रव्य तो महारत्नोंसे भरा हुआ सागर है, उसकी महिमाका क्या कहना! अहो! इसकी महिमा वचनातीत है। उसकी अपार–अपार महिमा अनुभवगम्य ही है। ऐसे स्वभावका विश्वास और दृष्टि करे तो मालूम हो। २९५

*

सन्त कहते हैं कि हम हमारे स्वघरमें आए हैं।

अब हम अनुकूलताके बर्फमें गलनेवाले नहीं और प्रतिकूलताकी अग्निमें जलनेवाले नहीं। हमारा ज्ञान–विलास प्रकट हुआ है, उसमें हम सोये सो सोये। अब हमें उठानेमें कोई भी समर्थ नहीं है। २९६

*

अनुभवकी शोभा वासत्वमें आत्मद्रव्यके कारण है। आत्मद्रव्य कूटस्थ होनेसे अनुभव में नहीं आता। अनुभव तो पर्यायका ही होता है, परन्तु पर्यायमें द्रव्यका स्वीकार हुआ, पर्यायकी ऐसी शोभा आत्मद्रव्यके कारण ही है। २९७

*

'समयसार' – अर्थात् सर्वज्ञकी दिव्य ध्वनिका वर्तमान पूर्णरूप। बारह अंग और चौदह पूर्वका दोहन ही 'समयसार' है और सम्पूर्ण समयसारका दोहन ४७ शक्तियाँ हैं। (आचार्य देवने) शक्तियोंका वर्णन कर के आत्माके परमात्म–स्वरूपको उजागर कर दिया है। इन शक्तियोंके वर्णनमें तो केवलीका हार्द है। 'समयसार' तो भरतक्षेत्रका अद्वितीय शास्त्र है। २९८

*

अहो! सम्यग्दृष्टि जीवको छः छः खंडके राज्यमें संलग्न होने पर भी, ज्ञानमें तनिक भी ऐसी मचक नहीं आती कि ये मेरे हैं, और छियानवै हज़ार अप्सरा जैसी रानियोंके वृन्दमें रहने पर भी उनमें तनिक भी सुखबुद्धि नहीं होती। अरे! कोई नरककी भीषण वेदनामें पड़ा हो तो भी अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनकी अधिकता नहीं छूटती है। इस सम्यग्दर्शनका क्या माहात्म्य है – जगतके लिए इस मर्मको बाह्य दृष्टिसे समझना बहुत कठिन है। २९९

*

दर्शन–मोहको मन्द किये बिना वस्तुस्वभाव ख्यालमें नहीं आता; और दर्शन–मोहका अभाव किए बिना आत्मा अनुभवमें आ सके, ऐसा नहीं है। ३००

*

आत्माको पानेके लिए तो पूरा इसके पीछे पड़ना चाहिए। इसीका रटन करना चाहिए। सोते–जागते इसीका प्रयत्न करना चाहिए। रुचिकी यथार्थता बनी रहनी चाहिए। अन्तरमें परमेश्वर कितना महान है! उसके दर्शन के लिये कौतूहल जागे तो उसके दर्शन–बिना चैन न पड़े। ३०१

*

कोई भी जीव स्वयंके अस्तित्व–बिना, क्रोधादि होनेके कालमें यह जान ही नहीं सकता कि ये क्रोधादि हैं। स्वयंकी विद्यमानतामें ही ये क्रोधादि जाने जाते हैं। रागादिको जानते हुए भी 'ज्ञान'...'ज्ञान' इस प्रकार मुख्य रूपसे जाननेमें आने पर भी ऐसा नहीं मानता हुआ कि 'ज्ञान'...वही 'मैं हूँ,' ज्ञानमें ज्ञात होनेवाले रागादि मैं हूँ – ऐसे वह रागको एकताबुद्धिसे जानता है – मानता है, जिससे वह मिथ्यादृष्टि है। ३०२

*

भाई, तेर माहात्म्यकी क्या बात! जिसके स्मरणसे ही आनन्द आता है, उसके अनुभवके आनन्दकी क्या बात! अहो! मेरी सामर्थ्य कितनी? – जिसमें दृष्टि डालते ही खजाना खुल जाए, वह वस्तु कैसी? रागको रखनेका तो मेरा स्वभाव नहीं, पर अल्पज्ञताको भी नहीं रख सकता।

स्वयंको ऐसी प्रतीति होने पर यह निश्चय हो जाता है कि ''मैं सर्वज्ञ होऊंगा,'' अल्पज्ञ रहनेवाला नहीं हूँ। ३०३

*

इस वस्तुके लिए प्रयोग करने हेतु अन्तरमें-मूलसे पुरुषार्थका उफान आना चाहिए कि ''मैं ऐसा महान पदार्थ''!! ऐसे निरावलम्बन रूपसे, अन्यके आधार बिना, विचारकी धुन चलते-चलते ऐसा आए, कि बाह्य व्यापार न सुहावे। यह अभी है तो विकल्प ही, पर ऐसा लगे कि यह...मैं...यह...मैं...ऐसे धोलनका जोर बढ़ते-बढ़ते इन विकल्पोंसे भी छूट कर अन्तरमें उतर जाते हैं। (निर्विकल्प होनेके पूर्व ऐसी दशा होती है।) ३०४

*

इस आत्माके परमात्मा होनेकी बात तो अरबों रुपये देने पर भी सुननेको न मिले ऐसी है। यह परमात्माकी बात पैसेकी चीज ही नहीं है। इसका पैसोंसे मूल्यांकन नहीं होता। किसी भी बाह्य वस्तुसे मुल्यांकन हो सके - यह ऐसी चीज़ ही नहीं है। ३०५

*

सिरके टुकड़े करनेवालों और कंठ के छेदनेवालोंसे भी अपना जितना अहित नहीं होता, उतना अहित अपने विपरीत अभिप्रायसे होता है। जगतको अपने विपरीत अभिप्रायकी भयानकता भासित नहीं होती। ३०६

*

ज्ञान और रागके बीच भेदज्ञान होनेका यह लक्षण है कि ज्ञानमें रागके प्रति तीव्र अनादरभाव जगता है - यही ज्ञान और रागके मध्य भेदज्ञान होनेका लक्षण है। आत्मामें रागकी गन्ध भी नहीं। रागके जितने भी विकल्प उठते हैं, मैं उनमें जलता हूँ, वह दुःख-दुःख और दुःख हैं, विष हैं - ऐसा ज्ञानमें पूर्व निर्णय हो ; तो भेदज्ञान प्रकट होता है। ३०७

*

यदि अपने पीछे विकराल बाघ झपट्टा मारता हुआ दौड़ता आ रहा हो तो स्वयं कैसे भागते हैं! क्या वह मार्गमें विश्रामके लिए रुकेगा? ऐसे ही यह 'काल' झपट्टा मारता चला आ रहा है और अन्तरमें काम बहुत करना है , स्वयंको ऐसा लगना चाहिए। ३०८

*

सत्य बात समझनेमें अडिग रहना - भी एक पुरुषार्थ है। ३०९

*

परावलंबी-भावों में कहीं न कहीं महिमा रह जाती है - जिससे आत्माकी महिमाका खून हो जाता है। ३१०

*

भाई! तूँ शरीरकी ओर न देख! तेरे विकल्प व्यर्थ ही जाते हैं ; और आत्माका कार्य भी नहीं होता। शरीर तो धोखा देगा...भाई! तेरी आत्माका जो कुछ करना है सो कर ले। ३११

*

लौकिकभावकी भयंकरता !!

श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक–५२८(१) पर प्रवचन

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

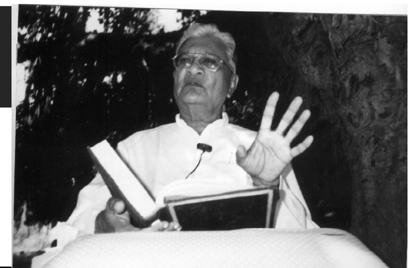

पत्रांक–५२८

बंबई, आसोज सुदी ११, बुध, १९५०

जिन्हें स्वप्नमें भी संसारसुखकी इच्छा नहीं रही, और जिन्हें संसारका स्वरूप सम्पूर्ण निःसारभूत भासित हुआ है, ऐसे ज्ञानीपुरुष भी आत्मावस्थाको वारंवार सम्भाल सम्भालकर उदय प्राप्त प्रारब्धका वेदन करते हैं, परंतु आत्मावस्थामें प्रमाद नहीं होने देते। प्रमादके अवकाश योगमें ज्ञानीको भी जिस संसारसे अंशतः व्यामोह होनेका संभव कहा है, उस संसारमें साधारण जीव रहकर, उसका व्यवसाय लौकिकभावसे करके आत्महितकी इच्छा करे, यह न होने जैसा ही कार्य है; क्योंकि लौकिकभावके कारण जहाँ आत्माको निवृत्ति नहीं होती, वहाँ अन्य प्रकारसे हितविचारणा होना संभव नहीं है। यदि एककी निवृत्ति हो तो दूसरेका परिणाम होना संभव है। अहितहेतु ऐसे संसारसम्बन्धी प्रसंग, लौकिकभाव, लोकचेष्टा इन सबकी सम्भाल यथासंभव छोड़ करके, उसे कम करके आत्महितको अवकाश देना योग्य है।

आत्महितके लिये सत्संग जैसा बलवान अन्य कोई निमित्त प्रतीत नहीं होता, फिर भी वह सत्संग भी जो जीव लौकिकभावसे अवकाश नहीं लेता, उसके लिये प्रायः निष्फल होता है, और सत्संग कुछ सफल हुआ हो, तो भी यदि लोकावेश विशेष–विशेष रहता हो तो उस फलके निर्मूल हो जानेमें देर नहीं लगती, और स्त्री, पुत्र, आरंभ तथा परिग्रहके प्रसंगमेंसे यदि निजबुद्धि छोड़नेका प्रयास न किया जाये तो सत्संगके सफल होनेका संभव कैसे हो? जिस प्रसंगमें महा ज्ञानीपुरुष सँभल सँभलकर चलते हैं, उसमें इस जीवको तो अत्यंत अत्यंत सावधानतासे, संकोचपूर्वक चलना चाहिये, यह बात भूलने जैसी ही नहीं है, ऐसा निश्चय करके प्रसंग–प्रसंगमें, कार्य–कार्यमें और परिणाम–परिणाममें उसका ध्यान रखकर उससे छूटा जाये, वैसे ही करते रहना, यह हमने श्री वर्धमानस्वामीकी छद्मस्थ मुनिचर्याके दृष्टांतसे कहा था।

(गतांकसे आगे...)

'...अहितहेतु ऐसे संसाससंबंधी प्रसंग, लौकिकभाव, लोकचेष्टा इन सबकी सँभाल यथासंभव छोड़ करके,...' देखा? सावधानी तोड़नेकी बात आयी। यह सावधानी कैसे मिटे? कि वह सब तुच्छ है, ऐसा जाने तब (सावधानी मिटेगी)। कोई ऐसा कहे कि, आप ये एक काम कर लेंगे तो बहुत पैसे मिल जायेंगे और आप तो सरलतासे कर सके ऐसी आपकी स्थिति है। अब वहाँ क्या विचार आना चाहिये ? कहिये तो! सामान्य मनुष्यको तो ऐसा ही लगेगा कि, फिर तो कर ही लेना चाहिये न! सहजरूपसे होता हो और बड़ा लाभ होता हो तो इसमें (सोचने जैसी बात) क्या है? कर (ही) लेना चाहिये। परन्तु उसे अंतर वैराग्य होगा तो ऐसा लगेगा कि, (रुपये) आये तो भी किस कामके? वह तो तुच्छ है।

कुछ कामके तो हैं नहीं, कुछ काममें तो आनेवाले हैं नहीं। फिर उनका क्या काम है? ज़रूरतसे अधिक पड़े रहे वे किस कामके? वे तो बेकार ही हैं न! किस कामके हैं ? कहिये! वे तो कुछ कामके नहीं होते। वे तो वैसे भी फ़िज़ूल हैं। इसकी व्यर्थता दिखे तो रस नहीं आयेगा, वरना रस आये बिना रहेगा नहीं। इसलिये पहलेसे ये बात ली है कि, *'...जिन्हें संसारका स्वरूप संपूर्ण निःसारभूत भासित हुआ है,...'* संसारमें कौन नहीं फँसेगा? कि, जिसे तुच्छता भासित हुई हो, वह।

मुमुक्षु :– भाईश्री! जिसे पैसेकी तंगी हो उसको यह कैसे लेनी?

पूज्य भाईश्री :– (पैसेकी) तंगी भी कल्पना ही तो है न! और क्या है? आपका जो उदय है, उसके अनुसार जो बनता है उसमें आप अपने व्यवसायको, आपकी रहन–सहनको (परिस्थितिके अनुरूप) accomodate करो, फिर तंगी कहाँकी? अगर सौ रुपयाकी आमदनी हो तो सौ रुपयेमें चलाओ, हज़ार रुपयाकी आमदनी हो तो नौसौमें चलाओ! पाँच हज़ारकी आमदनी हो तो चार हज़ारमें चलाओ, फिर पैसेकी तंगी कहाँसे? बाकी तो दस हज़ारकी आमदनी हो और बारह हज़ारका खर्चा रखकर बैठोगे तो तंगी ही होगी न! दुनियामें कम–बेसी आमदनीवाले सब मनुष्य जीते हैं कि नहीं? कोई मर जाते हैं क्या? मान लीजिये कि, आज आपको आठ हज़ारकी आमदनी है और एक नौकरी करनेवालेको आठसौकी आमदनी है, तो क्या आठसौकी आमदनीवाला मर जाता है कि जिंदा रहता है? आठसौवाला भी जीता है, आठ हज़ारवाला भी जीता है और अस्सी हज़ारवाला भी जीता है। सबकी कल्पनाएँ अलग–अलग हैं। उसमें और है क्या!

मुमुक्षु :– status का problem आड़े आता है।

पूज्य भाईश्री :– इसीलिये ऐसा कहा कि, लौकिकभावकी मुख्यतामें कभी आत्मकल्याण नहीं होगा। आठसौ रुपया मिलेगा तब भी आत्मकल्याण नहीं होगा और अस्सी हज़ार मिलेगा तब भी नहीं होगा। क्योंकि उस दिन (जरूरियातोंका) list लंबा हो गया होगा। एक नौकरी करनेवाले आदमीकी हररोज़की खरीदारीका list और एक महलमें रहनेवाले राजा–महाराजाकी रोज़की खरीदारीका list – (दोनोंको) मिलाये तो! किसका list बड़ा होगा? महलवालेका list बड़ा होगा। जिसका list बड़ा उसको ज्यादा उपाधि है। सीधी बात है। बड़ा भिखारी है। (गुरुदेवश्रीने) भावनगरके महाराजाको ही (बड़ा भिखारी) कहा था। कृष्णकुमारसिंहजी व्याख्यान सुनने आये थे। गुरुदेवश्री तो किसीको 'साहब, साहब...' कहे नहीं, इसलिये उन्हें दरबार ही कहते थे। गरासियाको दरबार कहते हैं न! (इसलिये ऐसा कहा), 'दरबार'! ज्यादा माँगे वह बड़ा भिखारी, कम माँगे वह छोटा भिखारी! इसलिये राजा–महाराजाको हम तो भिखारी ही देखते हैं, ऐसा कहते थे। भिखारीके जैसे देखते थे। हमारी दृष्टि तो ऐसी है। (गुरुदेवश्रीको) कहाँ चंदा इकट्ठा करने जाना था कि, किसीकी खुशामत करे! वे तो राजा–महाराजा, श्रीमंत, सेठिया लोग सामने बैठे हो तो कोड़े फटकारते थे। अपेक्षावालेको दीनता आती है कि, सामनेवालेको

खराब लग जायेगा तो! उसको जैसा लगना हो वैसा लगे – वस्तुका स्वरूप तो ये है। तुझे संसारसे छूटनेकी गरज है? और गरज है तो कितनी है? इसकी हमें परीक्षा करनी है। फिर हमें बात करनेका विचार है, वरना बात भी नहीं करनी है, ऐसी बात है। *'...अहितहेतु ऐसे संसारसंबंधी प्रसंग, लौकिकभाव, लोकचेष्टा इन सबकी सँभाल यथासंभव छोड़ करके,...'* यानी सब गौण कर देना। इसकी कोई कीमत नहीं है। ज्ञानीके लिये जगतकी आबरू मुखकी लार जैसी है। आता है? बनारसीदासजीके (पदमें आता है), 'लोकलाज लारसी' वह कुछ है ही नहीं, इसकी कोई कीमत ही नहीं है। लोगोंको नाक आड़े आती है। बाकी वैसे देखे तो वह कुछ चीज़ ही नहीं है, कल्पनाके अलावा और कुछ है ही नहीं। आपको कितने जन जानते हैं? कहिये तो! गिनती करे तो कितने होंगे? २५–५०–१००–२००–५०० बस! खास करके आदमी जब मर जाता है तब लोग इकट्ठे होते हैं न! (लोग ऐसा कहते हैं), भाईकी स्मशानयात्रामें बहुत लोग थे। ज्यादा से ज्यादा कितने होंगे? २००–५००–१००० बस! हो गई बात पूरी! हम ऐसे लें कि, हमारी पहचानवाले कितने? हमारे फलाने भाईका स्वर्गवास हो गया, चलो! हम ज़रा हो आते हैं। स्मशान हो आते हैं। ज्यादा से ज्यादा पहचानवाले कितने? लेकिन अगर आप मोक्षमार्गमें प्रवेश करो तो अनंत सिद्ध आपको पहचानेंगे! कितने? आप अनंत सिद्धोंके ज्ञानमें आयेंगे। वाह! वाह! शाबाश है दोस्त तुझे! अब तू हमारा दोस्त हो जायेगा। अल्पकालमें तू हमारी पंक्तिमें, हमारी बिरादरीमें, एक श्रृंखलामें आकर बैठ जायेगा। तो ये आबरू बड़ी? या ये (जगतके) सब भिखारी हमें जाने ये आबरू बड़ी? कौनसी आबरू बड़ी? परंतु आदमी किस तरह फँस जाता है! अनंत सिद्ध जानेंगे कि, ये आत्मा सिद्ध होनेवाला है। हमारी पंक्तिमें बैठेगा। खानेमें एक पंगतमें कौन बैठते हैं? ढेढ़–भंगीको तो साथमें नहीं बिठायेंगे, बनिये–बनियेके साथ बैठेंगे, ब्राह्मण–ब्राह्मण के साथ बैठेंगे। वैसे भगवानकी – सिद्धोंकी पंगतमें कौन बैठेगा? जो सिद्ध होगा वह बैठेगा। तो ये आबरू बड़ी हुई या जगतके भिखारी लोग जाने–पहचाने – वह आबरू बड़ी? कौनसी आबरू बड़ी? कौनसी आबरू बड़ी है? ऐसी बात है।

लोग अच्छा बोले, लोग हमारी तारीफ करें, हमारा कोई बुरा न बोले, ये सब लौकिकभावकी मुख्यतामें से आदमी निकलता नहीं है। जो बिलकुल व्यर्थ चीज़ है और अहितहेतु है। कैसी है? अहितहेतु है।

मुमुक्षु :– आपने डायरीमें लिखा है कि, वह जीव सत्यको बेचकर आत्मघात करता है।

पूज्य भाईश्री :– हाँ, ऐसा ही है।

'...इन सबकी सँभाल यथासंभव छोड़ करके,...' यानी कि पुरुषार्थ करके। 'यथासंभव' माने चाहे जितना पुरुषार्थ करके भी वह सावधानी छोड़नी है। *'...उसे कम करके आत्महितको अवकाश देना योग्य है।'* अर्थात् आत्मकल्याण हो, आत्माका हित हो, इसके लिये पहले जगह करनी होगी। अवकाश माने इसके लिये खाली जगह होनी चाहिये। अभी तो आत्माका हित होनेकी खाली जगह ही नहीं है! ऐसी परिस्थितिमें खड़ा है।

एक आत्मकल्याणकी भावना और वृत्ति तीव्र

होगी तो सब जगहसे हटने लगेगा और सब जगहसे संक्षेप होने लगेगा। फिर अहितहेतु ऐसा जो संसारप्रसंग, संसारकी वस्तुओंसे संक्षेप करने लगेगा। (इस पैराग्राफके मार्गदर्शनसे) पूरा समाज प्रतिबंध छुड़ाया है। लौकिकभाव ही छुड़ाया है। 'इस समाजमें जो लोग मुझे पहचानते हैं, उनकी नजरमें मैं ऐसा!' ये बात ही छुड़ा दी है। ये कल्पना नाश कर देने जैसी है। कल्पना ही नाश कर देने जैसी है। इस रास्ते पर जाना ही नहीं।

मुमुक्षु :- आपश्रीने डायरीमें लिखा है कि, जो लोगोंके अभिप्राय पर जीता है उसको खुदमें श्रद्धा नहीं है।

पूज्य भाईश्री :- उसको खुदकी ही श्रद्धा नहीं है। लोगोंके अभिप्राय पर जीनेवाला कितना दु:खी होगा? कि, इसका कोई हिसाब ही नहीं! अत: (कृपालुदेवने) उसे कालकूट ज़हर कहा है। क्योंकि इसमें एक बहुत बुरा तत्त्व यह है कि, जीवको स्वसन्मुख होकर जो सुख-शांति मिलनी चाहिये, इससे ये परिणाम बहुत विरुद्ध (दिशामें) जाते हैं। ये परिणाम इससे अति विरुद्ध जाते हैं। लोगोंके अभिप्राय पर जीनेवाला परसन्मुखता छोड़ ही नहीं सकता और स्वसन्मुखताके पुरुषार्थमें आ ही नहीं सकता। ऐसी एक भावकी जबरदस्त पकड़, लोगोंके अभिप्राय पर जीनेवाले (जीवोंकी) होती है। बहुत बड़ी पकड़ है। इसमें बिलकुल परतंत्रता होती है।

ये देखो! बड़े-बड़े नेता झोंपड़पट्टीमें जाकर क्यों गरज दिखाते हैं? क्योंकि, वे कहते हैं हमें मत दीजियेगा। भाईसाब! हम आपका काम करेंगे। हम आपका काम करनेके लिये आये हैं। हम आपके घर आये हैं। आप तो हमारे फलाने हैं... आप तो हमारे फलाने हैं। हमारे सच्चे राजा तो आप ही हो! ऐसा-ऐसा कहेंगे। गुजरातकी प्रजा ही हमारा राजा है - ऐसा कुछ-कुछ बोलेंगे। वे बेचारे कितनी दीनता करते हैं। इसका कारण यह है कि, उन्हें ज्यादा से ज्यादा परतंत्रता होती है। वे लोग लौकिकभावमें विशेषरूपसे आते हैं। जो सामाजिक नेता होते हैं वे ज्यादा से ज्यादा लौकिकभावमें होते हैं। वे जीव बहुत जल्दी अधोगतिमें जाते हैं। उन लोगोंका प्रकार ऐसा है। उसकी तो स्वप्नमें भी इच्छा नहीं करना।

अंदरमें तीन लोकका नाथ बैठा है और एक म्युनिसीपालिटीकी चेम्बरके चुनावमें पूरा-पूरा बिक जाता है। डबरा जितना क्षेत्र होता है, फिर भी। पूरे जगतके आगे भावनगरकी म्युनिसीपालिटी कितनी गिनी जायेगी? छोटा डबरा जितनी (गिनी जायेगी)। अब इसके चुनावकी धमाधम करता हो! या तो चेम्बरके चुनावमें धमाधम करता हो! क्या हो गया है तुझे? इसमें दीनताका पार नहीं है। इसमें खामखा हैरान होनेके सिवाय, दु:खी होनेके सिवाय और कुछ नहीं होता। और इसके दौरान कितना कर्मबंध कर लिया, उसका कोई हिसाब है? ऐसी वह line है।

हम बजारमें बैठते थे न! परन्तु कभी association की मिटींगमें-कमीटीमें या कहीं और कभी जाते ही नहीं थे। दलालके चौराहे पर भी कभी नहीं बैठते थे। कोई काम हो तो दलालके साथ टेलिफोन पर बात कर लेते थे कि, ये सौदा है, तुझे offer देता हूँ, लेना हो या बेचना हो, (तो बता देना)। पाँच मिनट भी कहीं जाकर फ़िज़ूलकी बातें या पचड़ेमें नहीं पड़ते थे।

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३ पर..)

मुनिहृदयसे प्रवाहित आत्मस्वरूपका अमृत...

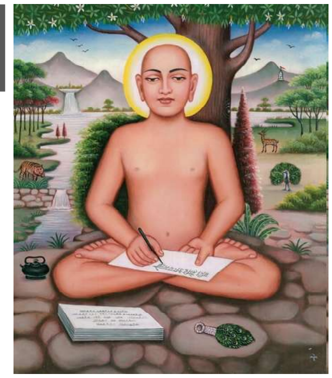

*** प्रथम तो मैं स्वभावसे ज्ञायक ही हूँ, केवल ज्ञायक होनेसे मेरा विश्वके (समस्त पदार्थोंके) साथ भी सहज ज्ञेयज्ञायकलक्षण सम्बन्ध ही है, परन्तु दूसरे स्वस्वामी लक्षणादि सम्बन्ध नहीं हैं, इसलिये मेरा किसीके साथ ममत्व नहीं, सर्वत्र निर्ममत्व ही है? २१**

(श्री अमृतचन्द्राचार्य, प्रवचनसार टीका, गाथा-२००)

*** जीव भिन्न है और पुद्गल भिन्न है, बस इतना ही तत्त्व कथनका सार है। (इसके अलावा) अन्य जो कुछ भी कहा जाता है, वह उसका ही विस्तार है। २२**

(श्री पूज्यपादस्वामी, इष्टोपदेश, गाथा-५०)

*** हे जीव! मैं अकिंचन हूँ अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं, ऐसी सम्यक् भावना तू निरन्तर कर, कारण कि इसी भावनाके सतत् चिन्तवनसे तू त्रैलोक्यका स्वामी होगा। यह बात मात्र योगीश्वर ही जानते हैं। यह योगीश्वरोंको गम्य ऐसा परमात्मतत्त्वका रहस्य मैंने तुझे संक्षेपमें कहा है। २३**

(श्री गुणभद्राचार्य, आत्मानुशासन, श्लोक-११०)

*** आत्माको एकरूप ही श्रद्धान करना अथवा एकरूप ही जानना चाहिए तथा एकमें ही विश्राम लेना चाहिए। निर्मल-समलका विकल्प नहीं करना चाहिए। इसमें ही सर्वसिद्धि है, दूसरा उपाय नहीं है। २४**

(पण्डित बनारसीदासजी, नाटक समयसार, जीवद्वार, पद-२०)

*** सिद्धगतिमें जैसे सर्व मलरहित ज्ञानस्वरूपी सिद्ध भगवान विराजमान हैं, वैसे ही देहके अन्दर विराजमान परमब्रह्मस्वरूप अपना आत्मा जानना चाहिए। २५**

(देवसेनाचार्य, तत्त्वसार, गाथा-२६)

*** हे देव! तू देवका आराधन करता है परन्तु तेरा परमेश्वर कहाँ चला गया? जो शिव/कल्याणरूप परमेश्वर सर्वांगमें विराज रहा है, उसको तू क्यों भूल गया है। २६**

(श्री मुनिवर रामसिंह, पाहुड़ दोहा, गाथा-५०)

* भले ही ११ अंग तक शास्त्र हमेशा पढ़ा करे, परन्तु जो आत्मतत्त्वका बोध नहीं करता तथा जिनदेव–समान निजाकारको अपनेमें नहीं देखता, वह जीव कल्याण प्राप्तिके योग्य नहीं है। २७

(नैमिश्वर, वचनामृत शतक, श्लोक–५२)

* जो जिनदेव हैं, वही मैं हूँ – इसकी भ्रान्तिरहित होकर भावना कर। हे योगिन! मोक्षका कारण कोई अन्य मन्त्र–तन्त्र नहीं है। २८

(श्री योगीन्द्रदेव, योगसार–७५)

* सबसे उत्कृष्ट परमतत्त्व एक परमात्मा है। अपने ही उत्कृष्ट स्वभावके द्वारा वह पहिचाना जाता है। निश्चयसे आत्मा जो है, वही परमात्मा है। जिसके भीतर यह उत्तम तत्त्व प्रगट हो जाता है, वह उत्तम मुक्ति पदसे जाकर मिल जाता है। २९

(श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड़, भाग–२, पृष्ठ–२७१)

* शुद्धनिश्चयनयसे, शक्तिरूपसे सर्वजीव शुद्ध–बुद्ध, एक स्वभावी होनेसे उपादेय हैं और व्यक्तिरूपसे पंच परमेष्ठी ही उपादेय हैं। उनमें भी (पंच परमेष्ठियोंमें भी) अरिहंत और सिद्ध – ये दो ही उपादेय हैं। इन दोनों में भी निश्चयसे सिद्ध ही उपादेय हैं और परमनिश्चयनयसे तो भोगाकांक्षादिरूप समस्त विकल्पजालरहित, परमसमाधिकालमें सिद्धसमान स्वशुद्धात्मा ही उपादेय हैं, अन्य सर्वद्रव्य हेय हैं। ३० (श्री नैमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव, वृहद् द्रव्यसंग्रह, अधि–१ का उपसंहार)

(परमागम–चिन्तामणिमें से साभार उद्धृत...)

(पृष्ठ संख्या १८ से आगे...)

दुःखपरिणामको दूरकर आत्माको स्वाभाविकरूपसे समझा सकने योग्य है; कह सकने योग्य है; और वह वचन स्वाभाविक आत्मज्ञानपूर्वक होनेसे दुःख मिटानेमें समर्थ है। इसलिये यदि किसी भी प्रकारसे जीवको उस वचनका श्रवण प्राप्त हो, उसे अपूर्वभावरूप जानकर उसमें परम प्रेम रहे, तो तत्काल अथवा अमुक अनुक्रमसे आत्माकी स्वाभाविकता प्रगट होती है।

(पृष्ठ संख्या ११ से आगे...)

इस पत्रमें दूसरे पैराग्राफसे सत्संगके विषयमें बात करते हैं कि, *‘आत्महितके लिये सत्संग जैसा बलवान अन्य कोई निमित्त प्रतीत नहीं होता,...’* उन्होंने बहुतसे पत्रोंमें अलग–अलग प्रकारसे (सत्संग) पर ध्यान खींचा है और सत्संगके गीत गाये हैं। फिर (सत्संग) क्यों निष्फल जाता है? सब बातें की हैं। यहाँ तक रखते हैं। विशेष लेंगे...

*

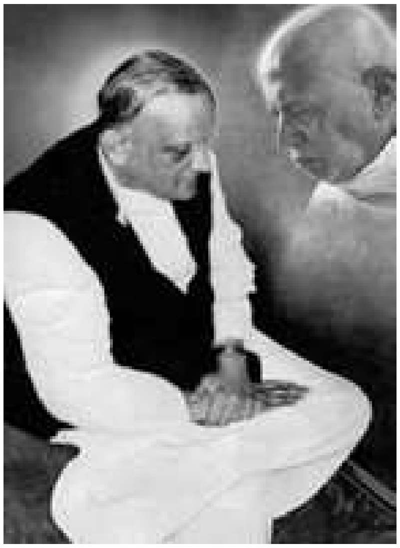

‘मार्गदर्शन’ और ‘मुमुक्षुकी भूमिका’

– ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

पर्यायको उसको स्वकालमें रहने दो, वह उस कालका सत् है; उसमें उपयोग मत रोकना। ५९७.

✻

हर समय द्रव्यस्वभावकी अधिकता रहनी चाहिए। जैसे तिनकेकी आड़में डूँगर (पर्वत) नहीं दिखता है, वैसे ही दृष्टि परिणाम पर रुकनेसे परिणामी ढँक जाता है। ५९९.

✻

क्षणिकभाव व्यक्त है उसको गौण करना; और त्रिकालीभाव अव्यक्त है उसको मुख्य करना। ६०३.

✻

‘मुमुक्षुकी भूमिका’

पहेले तो (तत्त्वकी) **धारणा बराबर होनी चाहिए। लेकिन धारणा अंतरमें उतरे तभी सम्यग्ज्ञान होता है। धारणामें भी इधरका** (आत्माका) **लक्ष्य होना चाहिए।** (धारणा स्वलक्ष्यी होनी चाहिए। स्वलक्ष्यी धारणा प्रयोगकी उत्पादक होती है। और प्रयोगान्वित धारणामें धारण किया हुआ उपदेश जब अंतरमें उतरता है तभी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है।) **२४.**

✻

विकल्पसे और मनसे (परलक्ष्यीज्ञानमें) **किया हुआ निर्णय सच्चा नहीं। अपनी ओर दृष्टिको तादात्म्य करनेपर ही अपनेसे किया हुआ निर्णय सच्चा होता है। पहले विकल्पसे-अनुमानसे** (स्वलक्ष्यीज्ञानमें) **निर्णय हो, उसमें भी लक्ष्य तो अंतरमें ढलनेका ही होना चाहिए। ४९.**

✻

तीव्र प्यास (जिज्ञासा) **लगनी चाहिए। प्यास लगे तो जैसे-तैसे बुझानेका प्रयत्न किये बिना रहे ही नहीं। ६४.**

✻

प्रश्न :- पक्के निर्णय बिना ‘मैं शुद्ध हूँ’, ‘त्रिकाली हूँ’, ‘ध्रुव हूँ’, ऐसे-ऐसे अनुभवका

अभ्यास करें, तो अनुभव हो सकता है क्या?

उत्तर :- नहीं! पक्का निर्णय नहीं, लेकिन यथार्थ निर्णय कहो। यथार्थ निर्णय होनेके बाद ही निर्णयमें पक्कापन होता है, फिर अनुभव होता है। ९२.

*

विकल्पकी भूमिकामें भी (जिसको) निर्णय नहीं होता, उसको निर्विकल्प निर्णय होनेका अवकाश ही कहाँ है? ११८.

*

त्रिकालीका पक्ष करो! ऐसा (अपूर्व) **पक्ष करो कि अनंतकालमें कभी हुआ न हो। वर्तमानका पक्ष छोड़ो! ३२८.**

*

जिसको अपना सुख चाहिए उसे, अपना सुख जिनको प्रकटा है, उनके पास (सर्वार्पण बुद्धिपूर्वक शरणमें) **जानेका भाव आता है। ५०१.**

*

(पृष्ठ संख्या १९ से आगे...)

मोक्षमार्ग कहा गया है। ऐसे अमूर्तिक मोक्षमार्गको मूर्तिमंतरूपमें यदि देखना हो तो ये देखिये मुनिराजको! मुनिराज हैं सो मूर्तिमंत मोक्षमार्ग है। वास्तवमें तो मोक्षमार्ग अमूर्तिक है, परन्तु मुनिराज हैं वे मूर्तिमंत मोक्षमार्ग है। इस प्रकार आत्मद्रव्य, आत्मस्वभाव अमूर्तिक है और जो जिनप्रतिमा है वह मूर्तिमंत आत्मस्वभाव है। ऐसा है वास्तवमें तो। जो उस विषयका परमार्थ है। जितना भी जिनोक्त व्यवहार है उन समस्त जिनोक्त व्यवहारमें परमार्थ निहित है। निहित अर्थात् भीतरमें, गर्भमें समाहित है। या ऐसा कहो कि, व्यवहार द्वारा भी परमार्थको ही दरशाया गया है। – यह सिद्धांत है।

*

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल क्र.-२०५, दि.१९-१०-८७, प्रवचन क्र.-१६२, 'अध्यात्म सुधा' भाग-६, पन्ना नं - २४८,२४९)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (फरवरी-२०२६, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि

श्रीमती वर्षाबहिन हेमाणी, भावनगर

की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।

अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

आत्मा – दिव्यमूर्ति देव !!

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी–सीडी –१५ – B

– प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

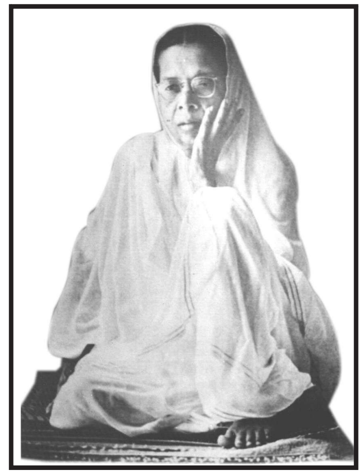

निरंतर झरता आस्वाद में आता जो सुन्दर आनन्द ऐसा स्वसंवेदन जो प्रगट होता है, वह स्वसंवेदन उसही क्षण स्वसंवेदन अनुभव में आता है। अनुभव होने के बाद उसे जानता है ऐसा नहीं है। ज्ञान का स्वभाव यानी क्या? जो लोकालोक को जाननेवाला आत्मा, उसका ज्ञानस्वभाव क्या नाश हुआ है? नाश नहीं हुआ है। स्वानुभूति में सब जानता है। मात्र प्रत्यक्ष–परोक्ष का भेद है। परोक्ष यानी अनुभव तो उसे प्रत्यक्ष है। अनुभव अपेक्षासे प्रत्यक्ष है। आनन्द को, अपूर्व अनुपम आनन्द को प्रत्यक्ष जानता है। अचिंत्य शक्तिसे भरा आत्मा, चिंतवन में नहीं आये, जो वाणी में नहीं आ सकता, जो वेदन में आता है, उस वेदन में जानता है।

उसका पुरुषार्थ किसलिये है? आत्मा का सुख, आत्मा की स्वानुभूति के लिये जो अनन्त कालसे आत्मा ख्याल में नहीं आया, अनन्त सामर्थ्यसे भरपूर, जो कुछ चाहिये वह उसे आत्मामें–से प्राप्त होता है, ऐसा आत्मा स्वानुभूति में आये और आनन्द गुप्त रहे एवं सब निकल जाये और शून्य हो जाये ऐसा नहीं होता। स्वंय की अनन्त शक्तिओंसे भरपूर और अनेक जात के स्वभावसे भरपूर आत्मा का वेदन उसही क्षण वेदन में आता है। उसे आश्चर्यकारी आत्मा, चमत्कारी आत्मा उसही क्षण वेदन में आता है। गुरुदेव के प्रवचन में बारंबार आता था, गुरुदेव कहते थे, शास्त्रों में भी आता है। वेदन में आये ऐसा आत्मा है।

मंगलवाणी १५ - C

मुमुक्षु :– एक प्रश्न है, प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप है, परन्तु हमारे पास तो वर्तमान में मति–श्रुतज्ञान ही है तो हम परमात्मस्वरूप हैं, ऐसा मति–श्रुतज्ञान द्वारा कैसे ख्याल में आये? इसे अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने की कृपा कीजिये।

समाधान :– ये आत्मा परमात्मस्वरूप है। गुरुदेवने बहुत कहा है कि आत्मा स्वयं जो वर्तमान ज्ञान है उससे ही समझ में आता है। परमात्मस्वरूप आत्मा वस्तु स्वरूपसे परमात्मा है। उसे जानने के लिये मति–श्रुतज्ञान है। मति–श्रुतज्ञानसे ही आत्मा जानने में आता है। मति–श्रुतसे समझ में नहीं आये

ऐसा कुछ नहीं है। आत्मा ज्ञानस्वरूप ज्ञायक है, वह जाननेवाला है। उसमें मति और श्रुत दोनों द्वारा आत्मा पहचानने में आता है। उसे पहचानने के लिये कोई दूसरे ज्ञान की जरूरत नहीं पड़ती। उसे जानने के लिये अवधिज्ञान या मनःपर्ययज्ञान या ऐसा कोई ज्ञान हो तो आत्मा पहचानने में आये ऐसा कुछ नहीं है। कोई प्रत्यक्ष ज्ञान हो या कोई प्रत्यक्ष दिखाई दे कि जिससे देवलोक और नरक आदि दिखाई दे ऐसा अवधिज्ञान हो, ऐसे अवधिज्ञान द्वारा अथवा किसीके मन की बात जाने ऐसा ज्ञान हो तो आत्मा पहचानने में आये ऐसा कुछ नहीं है।

मति और श्रुत द्वारा ही आत्मा पहचानने में आता है। आत्मा पहचानने के लिये ज्ञान के कोई भेद पर दृष्टि देने की ज़रूरत नहीं है, आत्मा ज्ञायक ही है। यह ज्ञान हो या मति हो या श्रुत हो, उसपर दृष्टि दे कि यह ज्ञान है इसलिये इसके द्वारा पहचानने में आये, ऐसा नहीं है। आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप ज्ञायक ही है। इसप्रकार ज्ञायक ही लक्ष्य में लेना है। यह मति है, इसप्रकार मति पर लक्ष्य रखकर आत्मा पहचानने में आये ऐसा नहीं है या श्रुत पर लक्ष्य रखकर आत्मा पहचानने में आये ऐसा नहीं है।

आत्मा स्वयं ज्ञायक है। उस ज्ञायक को स्वयं पहचानने का प्रयास करे उसमें मति और श्रुत साथ में आता है। इसलिये मति और श्रुत द्वारा आत्मा पहचानने में आता है। उसके लिये कोई दूसरे ज्ञान की ज़रूरत नहीं पड़ती। विचारसे नक्की करे कि मैं परमात्मा हूँ। यह मेरा स्वभाव है। यह ज्ञायक है सो मैं हूँ। ये विभाव होते हैं वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो ज्ञायक ही हूँ। इसप्रकार मति–श्रुत द्वारा निर्णय करे और बराबर निःशंकपने निर्णय करे तो स्वसंवेदन भी मति–श्रुत द्वारा ही होता है और स्वानुभूति में भी मति–श्रुत ही कार्य करता है। अन्य कोई ज्ञान की ज़रूरत नहीं पड़ती।

आत्मा ज्ञायक है वह मति–श्रुत द्वारा ही पहचानने में आता है। इसलिये स्वयं विचार करे, ज्ञायक को पहचाने तो पहचानने में आये ऐसा है। और गुरुदेवने बहुत समझाया है। इसलिये आत्मा मति–श्रुतज्ञान द्वारा ही पहचानने में आता है। अन्य कोई ज्ञान की राह देखनी पड़े ऐसा नहीं है। ये जो क्षयोपशमज्ञान है उससे ही आत्मा पहचानने में आता है। एक पारिणामिकभाव पर दृष्टि करे। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव आदि भावोंसे आत्मा पहचानने में आये ऐसा भी नहीं है।

आत्मा एक पारिणामिकभाव जो अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध है, उससे आत्मा पहचानने में आता है। कोई भेद पर दृष्टि रखने की ज़रूरत नहीं है। मति पर या श्रुत पर या अवधि पर या मनःपर्यय पर या केवलज्ञान पर, ऐसे कोई भी ज्ञान पर दृष्टि रखनी या कोई भाव पर दृष्टि रखनी (इसकी ज़रूरत नहीं है)। आत्मा स्वयं पारिणामिकस्वरूप है, उसे पहचाने, ऐसे आत्मा को दृष्टि में ले, निःशंक हो जाये और ऐसी ज्ञाता की धारा प्रगट हो तो स्वानुभूति में भी मति–श्रुत ही कार्य करता है। उससे ही स्वसंवेदनज्ञान प्रगट होता है। दूसरे कोई ज्ञान की उसमें जरूरत नहीं पड़ती। किसीकी राह देखनी नहीं पड़ती।

*

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश आगेके अंकमें...)

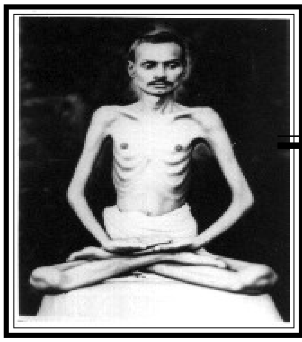

- परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक - ३९५

बंबई, श्रावण वदी, १९४८

ॐ

'तेम श्रुतधर्मे रे मन दृढ धरे, ज्ञानक्षेपकवंत'

जिसका विचारज्ञान विक्षेपरहित हुआ है, ऐसा 'ज्ञानाक्षेपकवंत' आत्मकल्याणकारी इच्छावाला पुरुष हो वह ज्ञानीमुखसे श्रवण किये हुए आत्मकल्याणरूप धर्ममें निश्चल परिणामसे मनको धारण करता है, यह सामान्य भाव उपर्युक्त पदका है।

उस निश्चल परिणामका स्वरूप वहाँ कैसे घटित होता है? यह पहले ही बता दिया है कि जैसे दूसरे घर काम करते हुए भी पतिव्रता स्त्रीका मन अपने प्रिय स्वामीमें रहता है वैसे। जिस पदका विशेष अर्थ आगे लिखा है, उसे स्मरणमें लाकर सिद्धांतरूप उपर्युक्त पदमें संधीभूत करना योग्य है क्यों कि 'मन महिलानुं वहाला उपरे' यह पद दृष्टांतरूप है।

अत्यंत समर्थ सिद्धांतका प्रतिपादन करते हुए जीवके परिणाममें वह सिद्धांत स्थित होनेके लिये समर्थ दृष्टांत देना ठीक है, ऐसा जानकर ग्रंथकर्ता उस स्थानपर जगतमें, संसारमें प्रायः मुख्य पुरुषके प्रति स्त्रीका 'क्लेशादि भाव' रहित जो काम्यप्रेम है उसी प्रेमको सत्पुरुषसे श्रवण किये हुए धर्ममें परिणमित करनेको कहते हैं। उस सत्पुरुष द्वारा श्रवणप्राप्त धर्ममें, दूसरे सब पदार्थोंमें रहे हुए प्रेमसे उदासीन होकर, एक लक्षसे, एक ध्यानसे, एक लयसे, एक स्मरणसे, एक श्रेणिसे, एक उपयोगसे, एक परिणामसे सर्व वृत्तिमें रहे हुए काम्यप्रेमको मिटाकर, श्रुतधर्मरूप करनेका उपदेश किया है। इस काम्यप्रेमसे अनन्तगुणविशिष्ट श्रुतप्रेम करना उचित है। तथापि दृष्टांत परिसीमा नहीं कर सका, जिससे दृष्टांतकी परिसीमा जहाँ हुई वहाँ तकका प्रेम कहा है। सिद्धांत वहाँ परिसीमाको प्राप्त नहीं किया है।

अनादिसे जीवको संसाररूप अनंत परिणति प्राप्त होनेसे असंसारत्वरूप किसी अंशका उसे बोध नहीं है। अनेक कारणोंका योग प्राप्त होनेपर उस अंशदृष्टिको प्रगट करनेका योग प्राप्त हुआ तो उस विषम संसारपरिणतिके आड़े आनेसे उसे वह अवकाश प्राप्त नहीं होता; जब तक वह अवकाश प्राप्त नहीं होता तब तक जीव स्वप्राप्तिभानके योग्य नहीं है। जब तक वह प्राप्ति नहीं होती तब तक जीवको किसी प्रकारसे सुखी कहना योग्य नहीं है, दुःखी कहना योग्य है, ऐसा देखकर जिन्हें अत्यंत अनन्त करुणा प्राप्त हुई है, ऐसे आप्तपुरुषने दुःख मिटनेका मार्ग जाना है जिसे वे कहते थे, कहते हैं, भविष्यकालमें कहेंगे। वह मार्ग यह है कि जिनमें जीवकी स्वाभाविकता प्रगट हुई है, जिनमें जीवका स्वाभाविक सुख प्रगट हुआ है; ऐसे ज्ञानीपुरुष ही उस अज्ञानपरिणति और उससे प्राप्त होनेवाले

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३ पर..)

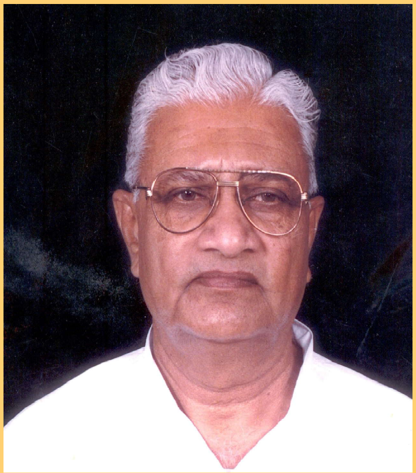

जिनेन्द्र प्रतिमाकी स्थापनाका मर्म !!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

शुद्धात्मदेव! वही 'महावीरदेव' है। 'महावीर'। वीर अर्थात् अत्यंत पराक्रमी, महान पराक्रम किया वह 'महावीर'। अपनेमें महान पराक्रम करनेका सामर्थ्य है, पुरुषार्थ है इस अपेक्षा खुद भी महावीर है। भगवान महावीरका संदेश भी ऐसा है कि, मुझे देखते वक्त तू अपने आपको देख! मुझे देखते समय तू केवल मुझे मत देख परन्तु अपने आपको देख! वास्तवमें ऐसा संदेश है। क्योंकि वे स्वयं तो ध्यानस्थ अवस्थामें हैं, उनकी ध्यानस्थ अवस्थामें तुम्हें क्या देखना है? कि आत्मस्वभाव!! कैसा आत्मस्वभाव? कि जैसा यहाँ भीतरमें है वैसा। इस तरह सीधा वहाँसे यहाँ अनुसंधान होवे जब तो तूने (वास्तवमें) दर्शन किये है वरना तूने दर्शन नहीं किये परन्तु राग किया है, केवल रागका विकल्प किया है, केवल राग किया है। हालाँकि ऐसा राग करनेके हेतुसे इनकी स्थापना नहीं होती है, स्थापना तो अपने स्वभावका अनुसंधान करनेके लिये है, अपने स्वसंवेदन भावका स्मरण करनेके लिये है, अपने स्वसंवेदनको आविर्भूत करनेके लिये है। क्योंकि अनंत एकाग्रता, अनंती एकाग्रता है। अरिहंत परमात्माको तेरह वें गुणस्थानमें अनन्ती एकाग्रता होती है। और मुनिदशामें जो प्रचूर स्वसंवेदन होता है इससे अनन्तगुना स्वसंवेदन होता है वहाँ। बेहद स्वसंवेदन है। मुनिदशामें प्रचूर आनन्द कहा है इससे अनन्तगुना आनन्द है वहाँ। और ठीक ऐसा ही अपना (मूल) स्वरूप है।

यह तो प्रवचनसारकी ८०वीं गाथामें लिया है कि 'जे जाणतो अरहंतने द्रव्य–गुण–पर्ययपणे।' जिसने आत्माको नहीं पहचाना उसको आत्माकी पहचानका कारण बनता है; जो भेदज्ञान नहीं करता हो उसको भेदज्ञान होनेमें कारणभूत होता है, जिसने आत्माको पहचान करके अनुभव कर लिया हो और भेदज्ञान भी करता हो उसे विशेष स्वसंवेदनमें या ध्यानमें कारणभूत होता है। मुख्यरूपसे तो मोक्षमार्गमें स्थित धर्मात्मा स्थापना करते होने से, भगवानकी प्रतिमाकी स्थापनाको ध्यानका कारण कहा है। मुख्यरूपसे यह ध्यानका कारण है, गौणरूपसे वह अन्य कारण है। अन्य मतलब यह पहचानका और भेदज्ञानका यह गौणरूपसे कारण है। मुख्यरूपसे तो ध्यानका कारण है।

प्रश्न : ध्यानका कारण कैसे?

समाधान : ध्यानस्थ प्रतिमा है इसलिए! स्वरूप ध्यान! मूर्तिमंत स्वरूपध्यान! है वैसे। मूर्तिमंत स्वरूपध्यान है। वास्तवमें तो अमूर्त आत्मस्वभावकी मूर्ति जो है। अरिहंत भगवान अर्थात् अमूर्त आत्मस्वभावकी मूरत! बस! अमूर्त तो दिखता नहीं। यहाँ कहते हैं कि उसे भी अगर तुझे देखना हो तो है यहीं मूर्तरूपसे! ऐसा है। ये 'अष्टपाहुड'में ऐसा लिया है न! कि मोक्षमार्ग है सो अमूर्त आत्मद्रव्यके अमूर्त परिणाम हैं। मुनिराजके सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप परिणाम हैं सो अमूर्त द्रव्यके अमूर्त परिणाम हैं जिसे

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १५ पर..)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

Printed Edition : **3510**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041